ध्यान दें:

25

समाधि के अङ्ग तथा विघ्न

निर्विकल्पक समाधि में अखण्डाकार चित्तवृत्ति का उदय होने पर अज्ञान का नाश हो जाता है। जैसे कतकरेणु जलस्थ मल का नाश करके स्वयं का भी लय हो जाता है। वैसे ही अखण्डाकार चित्तवृत्ति अज्ञान का नाश करके स्वयं भी अज्ञानकार्यत्व से नष्ट हो जाती है।निर्विकल्पक समाधि के उदय होने से अज्ञान का नाश होने पर मोक्ष सम्भव होता है। केवल श्रवण मननों के द्वारा ही निर्वकल्प समाधि सम्भव नहीं होती है। निर्विकल्पक समाधि के लिए कोई योग्यता अपेक्षित होती है। वह आठ अङ्गों के आचरण से सम्भव होती है। निर्विकल्पक समाधि के ये आठ अङ्ग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान तथा समाधि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' इस प्रकार से प्राज्ञों का वचन है। निर्विकल्पकसमाधि के भी बहुत से विघ्न है । वे है लय विक्षेप कषाय तथा रसास्वाद। इस पाठ में निर्विकल्पक समाधि के अङ्गों का भेद सहित आलोचन किया जाएगा। समाधि के विघ्नों के स्वरूप भी आलोचित होंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- निर्विकल्पक समाधि के अङ्गों को जानने में;
- अद्वैतवेदान्तमत में तथा पतञ्जलि के मत में उनका किस प्रकार का स्वरूप है जान पाने में;
- उन अङ्गों में योगी लोग फल की सिद्धि में किस प्रकार का लाभ प्राप्त करेंगे जान पाने में;
- निर्विकल्पक समाधि के विघ्न कौन-कौन से हैं? जानने में;
- किस प्रकार से योगी लोगों को विघ्नों से अपनी रक्षा करनी चाहिए। जानने में;
- धारणा ध्यान तथा समाधियों के भेदों को जानने में;

पाठ-25

समाधि के अङ्ग तथा विघ्न

ध्यान दें:

25.1) निर्विकल्पक समाधि के अङ्ग

निर्विकल्पक समाधि के आठ अङ्ग होते हैं। वेदान्तसार में सदान्द योगीन्द्र नें कहा है- अस्य अङ्गानि यम, नियमासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधय:" इस प्रकार से तथा महर्षि पतञ्जलि नें भी योगसूत्र में आठ अङ्ग बताए है- "यम, नियमासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधयोऽष्टावङ्गानि, अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि इस प्रकार से ये आठ अङ्ग होते हैं। इनका स्वरूप नीचे आलोचित किया जाएगा।

25.1.1) यम

यम के स्वरूप के विषय में वेदान्तसार में कहा गया है- "तत्र अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:" अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पाँच यम कहलाते है। सामान्यत: अहिंसा मन वाणी तथा काया के द्वारा दूसरों को पीड़ा नहीं पहुँचाना है। सत्य से तात्पर्य है यथार्थ भाषण, अस्तेय से तात्पर्य चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य से तात्पर्य है अष्टाङ्ग मैथुनों का त्याग करना, अपरिग्रह से तात्पर्य संचयन न करना है। समाधि के अनुष्ठान के लिए अनुपयुक्त वस्तुओं का असंग्रह। अहिंसा आदि के विषय में विस्तार से आलोचन पाञ्चजल्य योग सूत्र में वर्णित है उसके अनुसार अहिंसादि का निरूपण किया जा रहा है।

अहिंसा

यमों में अहिंसा से तात्पर्य है सभी भूतों का अपीडन तथा उनकी प्राणवियोगानुकूल चेष्टा का अभाव। सत्यादि अन्य यम, नियम, अहिंसा के ही मूल है। सत्य आदि अन्य यम अहिंसा के ही मूल होते है। अहिंसा की सिद्धि सत्यादि के द्वारा ही सम्भव होती है। इस हेतु से सत्य आदि भी प्रतिपादित किए गए हैं। अहिंसा का वैशद्य सत्यादि के द्वारा ही होता है। भारतीय शास्त्रों में भी यम के महाफलों की प्रशंसा की गई है। श्रुति में इस प्रकार से कह गया है -"मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" महाभारत में इस प्रकार से कहा गया है "अहिंसा परमो धर्म:" इति श्रीमद्भगवद्गीता में दैवी सम्पदा के निरूपण के प्रसङ्ग में 'अहिंसा सत्यम क्रोध' इत्यादि श्लोक में अहिंसा की आलोचन की गयी है। हिंसा मात्र को ही हेय बताया है। यज्ञ में विधीयमान हिंसा भी पाप को जन्म देती है। इस प्रकार सांख्य शास्त्रज्ञों का मत है। लेकिन कुछ स्थानों पर हिंसा होने पर भी साधारण मानवों को दोष नहीं होता है इस प्रकार से स्मृतिकार के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। उसी प्रकार से यदि गुरु बाल वृद्ध तथा ब्राह्मण आदि कोई भी यदि आततायी होते हैं तो उनको मारने में पाप नहीं लगता है।

"अग्निदौ गरदश्चौव शस्त्रपाणिर्धनापह:।
क्षेत्रदाराहश्चौव षडते आततायिन:॥" (आपटे कोष)

इस परिभाषा के अनुसार वह व्यक्ति जो दूसरों के प्राण लेने के लिए स्वभाव से सदा उत्सुक रहता है तथा इसका प्रयास किया करता है, वो आततायी होता है। आततायी छ: प्रकार के माने गए हैं। यथा- (1) आग लगाने वाला, (2) विष देने वाला, (3) हत्या करने वाला, (4) धन लूटने वाला, (5) स्त्री का अपहरण करने वाला, तथा (6) खेत या भूमि का अपहरण करने वाला। इस प्रकार अनिष्ट करने वाला आततायी होता है अनिष्ट चाहे कैसा भी या किसी भी प्रकार का क्यों न हो। उसे मारने में पाप

ध्यान दें:

नहीं लगता है।

योगियों को तो हमेशा हिंसा रहित ही होना चाहिए। आततायी हिंसक पशुओं के सामने भी वे हिंसा का प्रदर्शन नहीं करते हैं, कुछ हिंसा कभी कभी प्रकट करते है। योगियों की अहिंसा में प्रतिष्ठा होने पर हिंस्रपशु भी उनके सामने हिंसा प्रकटी नहीं करते हैं। पतंजलि ने इस प्रकार से कहा है- "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:"

सत्य

सत्य यथार्थ भाषण को कहते है। जिस प्रकार से देखा सुना उसी प्रकार से उसका कथन तथा चिन्तन सत्य कहलाता है। श्रुतियों ने इस प्रकार से उपदेश दिया है- "सत्यं वद" सत्य का महात्म्य मुण्डकोपिनिषद में इस प्रकार से बताया गया है-

"सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयान:।
येनाऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥" इति।

योगी की सत्य में प्रतिष्ठा होती है तो वह क्रियाफल का दाता होता है। उसके आशीर्वाद से लोगों को स्वर्गादि का लाभ सम्भव हो जाता है। इसलिए योगसूत्र में कहा गया है- **"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"** इति।

अस्तेयम्

स्तेय से तात्पर्य है शास्त्रविधि को छोड़कर के दूसरों का धन लेना अथवा दूसरों के धन को हरण करने की अभिलाषा। उसका अभाव अस्तेय कहा जाता है। अस्तेय के निषेध के लिए साक्षात् श्रुति उपदेश देती है।

"ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीयात् मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥" इति।

दूसरों के धन में लोभ नहीं करना चाहिए। यदि योगी अस्तेय प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है तो सङ्कल्पमात्र से उसे सभी रत्नों का लाभ भी मिलता है। इसलिए पतञ्चलि ने कहा है - **"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्"** इति।

ब्रह्मचर्यम्

ब्रह्मचर्य से तात्पर्य है गुप्तेन्द्रिय उपस्थ का संयम। और वह अष्टाङ्गमैथुन के त्याग से होता है। अष्टाङ्ग मैथुन को दक्ष संहिता मे इस प्रकार से निरूपित किया है।

"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गूह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च॥" इति।

ये मैथुन के आठ अङ्ग होते हैं। ब्रह्मचर्य इनके विपरीत ही होता है। मैथुन का त्याग मन कर्म तथा वचन से होना चाहिए। इसलिए शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के विषय में कहा है।

"कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥" इति।

ध्यान दें:

ब्रह्मचर्य में योगी की प्रतिष्ठा होती है तो उसे वीर्यलाभ होता है। जिससे शरीर मे इन्द्रियों में तथा मन में निरतिशय सामर्थ्य उत्पन्न होता है। योगी को अणिमादि सिद्धियाँ भी सुलभता से प्राप्त हो जाती है। स्वयं सिद्ध हुआ योगी ही शिष्यों में ज्ञानोत्पन्न करने में ब्रह्मचर्य के बल से समर्थ होता है।

अपरिग्रहः

समाधि के अनुष्ठान के लिए अपेक्षित द्रव्यों के अतिरिक्त अपेक्षित द्रव्यों का असंग्रह ही अपरिग्रह होता है। अपरिग्रह ही विषयों में वैराग्य करवाता है। विषयों के अर्जन करनें में बहुत कष्ट होता है। इसलिए विषय के अर्जन मे दोष होता है। धन कष्ट से कमाया जाता है। चोर चुरालेगा इस प्रकार से उसकी रक्षा में दोष होता है। विषयों का भोग होने पर शीघ्र ही विषय का क्षय हो जाता है। यह क्षय भी एक दोष होता है। विषय को भोगने के उपरान्त पुनः उसे भोगने के लिए इच्छा बलवान हो जाती है। तब विषय का अलाभ होने पर महान कष्ट होता है। यह ही विषय का सङ्ग दोष होता है। एक विषय का भोग होने पर अपर के विषय से ईर्ष्या होने लगती है यह विषय का हिंसा दोष होता है। विषयों में इन दोषों को देखकर के योगी को विषयों का परित्याग कर देना चाहिए। योगी यदि अपरिग्रह में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है तो उसका अतीत वर्तमान तथा भविष्यों के जन्म का ज्ञान सम्भव हो जाता है। इसलिए पतञ्जलि ने कहा है- **"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः"** इति।

25.1.2) नियम

नियम पाँच होते हैं शौच सन्तोष तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्राणिधान इनका विस्तार से आलोचन नीचे दिया जा रहा हैं

शौचम्

शौच शुचिता तथा पवित्रता को कहते है। वह शौच दो प्रकार का होता है। बाह्य तथा आभ्यन्तर। बाह्यशौच मिट्टी जल आदि के द्वारा बाह्यशरीर के मल को दूर करने से तथा पवित्र भोजन करने से होता है। आभ्यन्तर शौच मद मान असूया आदि चित्त के मलों के प्रक्षालन से होता है। इसलिए दक्ष संहिता में कहा गया है

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥ इति।

योगियों के लिए शौच अत्यन्त अपेक्षित होता है शौच के बिना कोई आध्यात्मिक सिद्धि नहीं होती है। काम, मद, मान आदि में लिप्त चित्त का शास्त्र प्रतिपादन विषयों में स्थैर्य सम्भव नहीं होता है। योगियों की बाह्य शौच से स्वशरीर में घृणा तथा परशरीर के स्पर्श की अनिच्छा उत्पन्न होती है। आभ्यन्तर शौच के द्वारा चित्तशुद्धि, चित्तशुद्धि में मन की प्रसन्नता, मन की प्रसन्नता से चित्त की एकाग्रता उससे इन्द्रयों पर निग्रह और इन्द्रिय जय आत्मदर्शन योग्यता योगी को प्राप्त होती है।

सन्तोष

जो प्राप्त हो जाए उसमे ही खुश रहना तथा सन्तोष करना। जिन विषयों के द्वारा योगी का जीवन सरलता से चल सके उन विषयों के द्वारा ही योगी को जीवन धारण करना चाहिए। उससे अधिक द्रव्य

ध्यान दें:

ग्रहण करने की योगी की अभिलाषा नहीं होनी चाहिए। कामों के उपभोग के द्वारा काम उपशान्त नहीं होते है। जैसा की कहा गया है-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ इति।

तृष्णा के क्षय के द्वारा जो सुख प्राप्त होता है वह सुख इहलौकिक तथा पारलौकिक वस्तुओं के भोगों के द्वारा भी प्राप्त नहीं होता है। इसलिए सन्तोष ही सुख का मूल होता है। योगियों का चित्त में सन्तोष होने पर उन्हे निरतिशय आनन्द की प्राप्ति होती है। इसलिए पतञ्जलि ने कहा है- सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः इति।

तप

कामों का नाश का नाम ही तप है। महानारायण उपदनिषद् में कहा है कि- "मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः" इति। पातञ्जल्य योगदर्शन में तो शीतोष्ण, भूख, प्यास, सुख, दुःख इत्यादि द्वन्द्वों को सहना तथा कृच्छ चान्द्रायणादि व्रत, तप, शब्द के द्वारा कहे गये हैं। तप से मल का क्षय होता है। तप से कल्मषों का नाश होता है। तप के द्वारा मल के क्षय होने पर योगी लोग अणिमादिकायसिद्धियों को तथा दूरश्रवणादि इन्द्रियसिद्धियों को प्राप्त कर लेते हैं।

स्वाध्यायः

स्वाध्याय से तात्पर्य है प्रणव का जप तथा उपनिषदादि ग्रन्थों की आवृत्ति। उपनिषदों में कहा भी गया है- **"ओमित्येव ध्यायथ आत्मानम्"** इति।

स्वाध्याय के द्वारा इष्टदेवता के दर्शन भी योगियों को सम्भव होते हैं- सूत्रितं च **"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग"** इति।

ईश्वरप्रणिधानम्

मनसोपचार ईश्वर की पूजा ही ईश्वरप्रणिधान होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा भी गया है - **"तं ह देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये"** ईश्वर में सर्वकर्मफल समर्पण ही ईश्वरप्रणिधान कहलाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोति ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ इति।

ईश्वर प्रणिधान के द्वारा सिद्ध योगी हमेशा स्वरूपस्थ होता हुआ संशयविपर्ययादि रहित होकर के अविद्यासंस्कारादि के क्षय का अनुभव करता है। उसके बाद क्रम से नित्यमुक्त होता हुआ ब्रह्मस्वाद का अनुभव करता है। ईश्वरप्रणिधान के द्वारा आत्मज्ञान होता है। तथा व्याधि युक्त आन्तरिक दोषों का नाश होता है।

25.1.3) आसन

आसन से तात्पर्य है की, हाथ पैर आदि के द्वार की जाने वाली पद्म स्वस्ति आदि मुद्राएँ। लोक में पद्मासन स्वस्तिक आसन आदि प्रसिद्ध आसन है। जिस अवस्था में स्थिरता के साथ बहुत देर तक

ध्यान दें:

रुका जा सकता है वह आसन कहलाता है। पतञ्जलि ने इस प्रकार से कहा है – "स्थिरसुखम् आसनम्" इति। सभी प्रकार के बाह्यप्रयत्नों को छोड़कर के बिना कम्पन किए बैठने के द्वारा आकाशादि अनंत विषयों में मन के समाधान से के द्वारा आसनसिद्धि होती है। आसनसिद्धि होने पर शीतोष्णादि द्वन्द्वों के द्वारा योगी अभिभूत नहीं होता है।

25.1.4) प्राणायाम

रेचक, पूरक, कुम्भक इत्यादि के द्वारा प्राण के निग्रह का उपाय प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम आसनसिद्ध होने पर ही होता है। श्वास तथा प्रच्छ्वास की गति का विच्छेद ही प्राणायाम होता है। बाह्य वायु का अन्दर ग्रहण करना श्वास कहलाता है। तथा अन्तःस्थ वायु को बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है।रेचक से तात्पर्य है प्राणवायु को बाँए नासापुट से अथवा दक्षिण नासापुट से धीरे धीरे बाहर निकालना तथा पूरक प्राणायाम से तात्पर्य है बाँए नासा पुट से अथवा दक्षिण नासापुट से श्वास को धीरे धीरे अन्दर ग्रहण करना। कुम्भक में श्वास को रोकना होता है। ये दो प्रकार का होता है आन्तरिक कुम्भक तथा बाह्य कुम्भक। आतन्तरिक कुम्भक श्वास को अन्दर ग्रहण करके रोका जाता है तथा बाह्य कुम्भक में श्वास को बाहर निकाल कर रोका जाता है। इस प्रकार से प्राणवायु के निरोध का प्राणायाम कहते है। प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा ज्ञान के आवरण क्लेश कर्म अधर्म आदि का क्षय होता है। अतः पतञ्जलि ने कहा भी है **"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"** इति।

25.1.5) प्रत्याहार

इन्दियों का अपने विषयों से प्रत्यावर्तन ही प्रत्याहार कहलाता है। अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियों का अपने शब्दादि विषयों से प्रत्यावर्तन प्रत्याहार होता है। श्रुति में इस प्रकार से कहा गया है – **"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः"** इति। वैषयिक आनन्द का त्याग करने पर ही निरतिशयान्द ब्रह्मरूप का लाभ सम्भव होता है। इसलिए मुमुक्षु के लिए प्रत्याहार उपेक्षित होता है। योगसूत्र में प्रत्याहार के स्वरूप के विषय में कहा गया है "स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार" इति। चित्त का निरोध होता है तो चित्त के साथ इन्द्रियों का भी निरोध सम्भव होता है। अपने विषयों के साथ इन्द्रियों के सम्बन्ध के अभाव में इन्द्रियाँ चित्त के समान निरुद्ध हो जाती है। योगीयों के प्रत्याहार की सिद्धि होने पर इन्द्रियाँ उनके वशीभूत हो जाती हैं।

25.1.6) धारणा

वेदान्तसार में धारण के स्वरूप के विषय में इस प्रकार से कहा है। **"अद्वितीयवस्तुनि अन्तरिन्द्रियधारणं धारणा"** इति। अर्थात् अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में अन्तरिन्द्रिय चित्त का स्थापन करना ही धारण कहलाती है। योगसूत्र में पतञ्जलि ने कहा है- **"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"** इति। इसका अर्थ है की नाभिचक्र,हृदय, आदिस्थानों में देवमूर्ति का चिन्तन करके उसमें चित्त को स्थित करना ही धारणा है।

25.1.7) ध्यान

ध्यान से तात्पर्य है कि अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में बार बार अन्तरिन्द्रियवृत्ति का प्रवाह। धारणा कुशलता के अभाव में चित्त के पूर्णरूप से स्थित नहीं

ध्यान दें:

होने पर ब्रह्म विषय में जो विचलित चित्तवृत्ति होती है वह ध्यान कहलाता है। पतञ्जलि के मत में चित्त को स्थिर करने के लिए अन्य विषयों से चित्त को बार बार हटा कर के एक ही स्थान में स्थित ध्यान कहलाता है। योगसूत्र में इस प्रकार से उन्होंने इस प्रकार से कहा है- **"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"** इति।

25.1.8) समाधि

निर्वकल्पक समाधि के अङ्ग रूप में कही गई यह सविकल्पक समाधि ही है। योग सूत्र में ध्यान ही ध्येयाकार में भासित होता है वर्तमान चित्तवृत्ति का जैसे स्थैर्य होता है तब वह समाधि कहलाती है। योगमतानुसार यह सम्प्रज्ञातसमाधि से भिन्न साधन रूप समाधि है। इसलिए कहा गया है- **"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"** इति।

इस प्रकार से ये निर्विकल्पक समाधि के अङ्ग होते है। ये सिद्ध होने पर निर्विकल्पक समाधि सम्भव होती है।

पाठगत प्रश्न 25.1

1. निर्विकल्पकक समाधि के आठ अंग कौन-कौन से हैं?
2. यम किसे कहते हैं?
3. अहिंसा किसे कहते हैं?
4. अहिंसा का प्रतिपादन करने वाला श्रुतिवाक्य क्या है?
5. आततायी कौन-कौन होते हैं?
6. योगियों को अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर क्या सिद्धि मिलती है।
7. सत्य किसे कहते हैं?
8. सत्य का वर्णन करने वाला मुण्डक श्रुति का वाक्य कौन-सा है?
9. योगियों की सत्य में प्रतिष्ठा होने पर क्या होता है?
10. अस्तेय किसे कहते है?
11. अस्तेय प्रतिष्ठा होने पर क्या होता है?
12. ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं?
13. अष्टाङ्ग मैथुन क्या क्या होते हैं?
14. ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर योगियों को क्या लाभ होता है।
15. अपरिग्रह किसे कहते हैं?

ध्यान दें:

16. अपरिग्रह की स्थिरता होने पर क्या होता है?
17. नियम कितने हैं?
18. शौच कितने प्रकार के होते हैं तथा कौन-कौन से हैं?
19. बाह्य शौच किसे कहते हैं?
20. आभ्यान्तर शौच किसे कहते हैं?
21. शौच की प्रतिष्ठा होने पर योगी को क्या लाभ प्राप्त होता है?
22. सन्तोष किसे कहते हैं?
23. सन्तोष से क्या होता है?
24. तप किसे कहते हैं?
25. स्वाध्याय किसे कहते हैं?
26. ईश्वर प्रणिधान किसे कहते हैं?
27. आसन किसे कहते हैं?
28. आसन की सिद्धि होने पर क्या होता है?
29. प्राणायाम किसे कहते हैं?
30. प्राणायाम की प्रतिष्ठा होने पर क्या होता है?
31. प्रत्याहार का स्वरूप क्या होता है?
32. धारणा किसे कहते हैं?
33. ध्यान किसे कहते हैं?
34. निर्विकल्पकक समाधि की अङ्गभूत समाधि क्या है?

25.2) समाधि के विघ्न

निर्विकल्पकक समाधि के चार विघ्न होते है। पूर्वोक्त अङ्गों का आचरण करने पर भी विघ्नवश निर्विकल्पकक समाधि सम्भव नहीं होती है। ये विघ्न है लय, विक्षेप, कषाय तथा रसास्वाद। वेदान्तसार में सादनन्द योगीन्द्र ने कहा है - "एवम् अस्य अङ्गिनः निर्विकल्पककस्य लय-विक्षेप-कषाय-रसास्वादलक्षणाः चत्वारः विघ्नाः सम्भवन्ति" इति। इनका स्वरूप का नीचे आलोचन किया जा रहा है।

लय

वेदान्तसार में कहा है- "लयः तावत् अखण्डवस्त्वनवलम्बनेन चित्तवृत्तेः निद्रा" यह लय दो प्रकार के होते है। बहुत समय तक अष्टाङ्ग सहित निर्विकल्पक समाधि के अभ्यास की कुशलता से प्रत्यगभिन्न परमान्द ब्रह्म में चित्तवृत्ति का लय यह प्रथम प्रकार है। जब आलस्य एक कारण बाह्यशब्दादि विषयों का ग्रहण नहीं होता है। तथा प्रत्यक्ष आत्मस्वरूप एक ज्ञान भी नहीं होता है। तब चित्तवृत्ति की स्तब्ध ीभावरूपा जो निद्रा वृत्ति होती है वह ही लय कहलाती है। इस प्रकार से दूसरे प्रकार का लय ही

ध्यान दें:

निर्विकल्पककसमाधि का विघ्न होता है उसके त्याग के लिए वेदान्तसार में उसके स्वरूप का आलोचन किया गया है।

विक्षेपः

अखण्डवस्तु का आलम्बन नहीं होने से चित्तवृत्ति का अन्य आलम्बन हो जाना विक्षेप कहलाता है। अखण्डवस्तु ब्रह्म के ग्रहण के लिए अन्तर्मुखता के द्वारा प्रवृत्त चित्त वृत्ति का ब्रह्मवस्तु में अवलम्बन नहीं होने से बाह्यवस्तु ग्रहण में प्रवृत्ति होकर के विक्षेप होता है। संस्कार ही प्रबल होते है। इसलिए पूर्वार्जित संस्कारवश कभी चित्त का विक्षेप हो जाता है। इसलिए योगी को सावधान रहना चाहिए।

कषायः

लय तथा विक्षेप का अभाव होने पर चित्तवृत्ति की रागादिवासना के द्वारा स्तब्धीभाव होने से अखण्डवस्तु का अनवलम्ब ही कषाय कहलाता है। ये रागादि तीन प्रकार के बाह्य तथा आभ्यान्तर वासना रूप होते हैं। बाह्य पुत्रादिविषय राग होते है। तथा आभ्यन्तर मनोराज्यादि होते हैं। वासनामय राग संस्कारूप होते हैं। अनादिकाल से बाह्याभ्यन्तर रागों के अनुभव से उत्पन्न संस्कारों के द्वारा कलुषित चित्त कभी श्रवणादि के अभ्यास द्वारा अन्तर्मुखी होता हुआ भी ब्रह्म के ग्रहण में असमर्थ तथा स्तब्ध हो जाता है। जैस कोई साधारण व्यक्ति राजदर्श के लिए अपने घर से निकल कर के राजमन्दिर में प्रविष्ट होता हुआ भी द्वार पाल के द्वारा रोक दिया जाता है उसी प्रकार से बाह्यविषयों को त्यागकर के अखण्डवस्तु के ग्रहण के लिए प्रवृत्त चित्त के रागादिसंस्कारों को उद्‌बोधकारण से स्तब्धीभाव उस ब्रह्मवस्तु के अग्रहण से वह कषाय इस प्रकार से कहलाता है।

रसास्वादः

रसास्वाद में अखण्डवस्तु के अनवलम्बन से भी चित्तवृत्ति का सामाराध्य के समय में सविकल्पानन्द का रसास्वादन होने लग जाता है। सविकल्पक समाधि में भी योगी आनन्द का अनुभव करता है। उसी आनन्द को ब्रह्मानन्द मानने वाले योगी कभी भी ब्रह्म स्वरूप का लाभ ग्रहण नहीं कर पाते है। यहाँ पर यह उदाहरण है की- किसी निधि के ग्रहण के लिए यदि कोई प्रवृत्त होता है और वह उस निधि के रक्षक भूतप्रेतादि से बचकर के आनन्द का अनुभव करता है लेकिन उसी आनन्द का परमान्द मानकर के वह कभी भी निधि के पास नहीं पहुँचता है। जिससे उसे कभी कभी निधि की प्राप्ति नहीं होती है। उसी प्रकर से योगी भी सविकल्पानन्द के रसास्वाद के द्वारा मोहित होकर उसी में ही रह जाता है। अतः योगीयों को उस आनन्द को छोड़कर के निर्वकल्पकसमाधि के लाभ के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए।

अतः गौडपादकारिका में कहा गया है

"लये सम्बोधयेत् चित्तं विक्षिप्तं शमयेत् पुनः।
सकषायं विजानीयात् शमप्राप्तं न चालयेत्।
नास्वादयेत रसं तत्र निःसङ्गः प्रज्ञया भवेत॥" इति।

जब चित्तवृत्ति का निद्रारूपी लय होता है तब मुमुक्षु को उसके निवारण के लिए जाड्यादि का परित्याग करके चित्त को सम्बोधित करना चाहिए। जब चित्त विक्षेप युक्त होता है। तब विषयवैराग्यादि के द्वारा चित्त का शमन करना चाहिए। तथा चित्त को फिर से अन्तर्मुखी करना चाहिए। जब चित्त

ध्यान दें:

रागादिकषायसहित होता है। तब विचार करके रागादि का त्याग करना चाहिए। क्योंकि रागादि बाह्यविषयक होते हैं वे अखण्डवस्तु की प्राप्ति में सहायक नहीं होते है। जब तक रागादि के द्वारा कलुषित चित्त रागादिवासनाक्षय सहित नहीं हो तब तक उसको अपने स्थान से विचलित नहीं करना चाहिए। वासनाओं के क्षय के बाद में चित्त स्वयं ही अखण्डवस्तु विषयक हो जाता है। जब चित्त सविकल्पकानन्द के स्वाद में रत होता है। तब वहाँ पर वैराग्य को धारण करना चाहिए। वहाँ पर योगी को रस का आस्वादन नहीं करना चाहिए। तथा विषादिकदु:खादि से रहित होकर के प्रज्ञा के द्वारा युक्त होना चाहिए। इस प्रकार से योगी स्थितप्रज्ञ कहलाता है। अत: भगवद्गीता में कहा गया है-

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट: स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।" इति।

25.2) अङ्गभूत धारणा, ध्यान तथा समाधीयों के भेद

विषयों से निवर्तित करके अद्वितीय वस्तु में चित्त की स्थापना करना ही धारणा होती है। धारणा के सत्य होने पर ही ध्यान सम्भव होता है। धारणा की कुशलता के अभाव में ब्रह्मविषयी चित्तवृत्ति विच्छिन्न होकर धीरे धीरे एकाग्र जब होती है तब वह ध्यान कहलाता है। ध्यान में तेल की धारा के समान निरन्तर सजातीय चित्तवृत्ति नहीं होती है। वह ही ध्यान जब पराकाष्ठा पर पहुँचता है तब ब्रह्मविषयिणी अव्यवहिता चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है। वह अवस्था ही सविकल्पक समाधि कहलाती है। सविकल्पक समाधि में विच्छिद् चित्तवृत्ति नहीं होती है। ध्यान धारण तथा समाधि ये पतंजलि के योग शास्त्र में संयम पद के द्वारा कहे गये है। इसलिए उनका एक सूत्र है "त्रयमेकत्र संयम:" संयम होने पर समाधिजनिता प्रज्ञा का विकास होता है। योगसूत्र में कहा भी गया है-

तज्जयात् प्रज्ञालोक: इति।

पाठगत प्रश्न 25.2

1. निर्वकल्पक समाधि को विघ्न कौन-कौन से हैं?
2. लय किसे कहते हैं?
3. विक्षेप का स्वरूप क्या है?
4. कषाय किसे कहते हैं?
5. रसास्वादन किसे कहते हैं?
6. ध्यान तथा समाधि में क्या भेद है?

पाठ सार

इसपाठ में निर्वकल्पक समाधि के अङ्ग तथा विघ्नों का आलोचन किया गया है। निर्वकल्पकसमाधि में ज्ञातृज्ञानज्ञेयादि विकल्पों का लय होने पर अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में तदाकारकारिता चित्तवृत्ति का निरन्तर एकीभाव से अवस्थान होता है। उस निर्वकल्पक समाधि के आठ अङ्ग होते है। वे हैं- यम, नियम,

ध्यान दें:

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान तथा समाधि। इनमें यम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, तथा ब्रह्मचर्य के रूप में पाँच प्रकार का होता है। नियम भी शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान के रूप में पांच प्रकार होता है। आसन पद्मासनादि के सहायता से अधिक समय तक कम्पन रहित होकर बैठना होता है। प्राणायाम रेचक, पूरक तथा कुम्भक के माध्यम से प्राण का निग्रह उपाय होता है। इन्द्रियों का अपने विषयों से प्रत्यावर्तन ही प्रत्याहार कहलाता है। विषयान्तरों से प्रतिनिवृत्त चित्त का ब्रह्म में स्थापन ही धारण होती है। ध्यान ब्रह्म विषय में विचलित अन्त:करण की वृत्ति होती है। सविकल्पकसमाधि ही यहाँ पर अङ्गभूत समाधि पद के द्वार बताई गई है।

निर्वकल्पक समाधि के ये चार विघ्न होते हैं- लय, विक्षेप, कषाय तथा रसास्वाद। अखण्डवस्तु के अलाभ से चित्तवृत्ति जाड्यभाव ही लय होता है। चित्तवृत्ति ब्रह्मालम्बन में असमर्थता के कारण जब अन्यविषयों का आलम्बन ग्रहण करती है वह विक्षेप कहलाता है। रागादि वासनाओं के द्वारा अनादिकाल विद्यमान चित्तवृत्ति का स्तब्धी भाव अखण्डवस्तु के अवलम्बन से कषाय होता है। सविकल्पसमाधि में ही आनन्द का रसास्वादन रसास्वाद कहलाता है। निर्वकल्पक समाधि में प्रतिष्ठा के लाभ के लिए योगी को इन विघ्नों से अपनी रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार से चारों विघ्नों से रहित चित्त वायु रहित स्थान में दीपक समान अचल सत् ब्रह्म रूप में जब स्थित होता हैं तब निर्विकल्पकक समाधि होती है। निर्विकल्पककसमाधि होने पर अज्ञाननाश से जीव जीवन्मुक्त हो जाता है। प्रारब्ध कर्म के क्षयान्तर शरीरपात से वह विदेह मुक्त हो जाता है।

आपने क्या सीखा

- निर्विकल्पक समाधि के अङ्गों को जाना,
- अद्वैत वेदान्त तथा पतञ्जलि के मत को जाना,
- योगी लोगफल सिद्धि में कौन-सा लाभ प्राप्त करेंगे यह जाना,
- निर्विकल्पक समाधि के विघ्नों को जाना,
- योगी लोग विघ्नों से कैसे रक्षा करते हैं, यह जाना,
- धारणा ध्यान समाधि रूप अष्टाङ्ग अंगों को योग से जाना,

पाठान्त प्रश्न

1. रेचक प्राणायाम क्या होता है?
2. पूरक प्राणायाम क्या होता है?
3. कुम्भक प्राणायाम किस प्रकार से होता है?
4. लय होने पर योगी को क्या करना चाहिए?
5. कषाय होने पर योगी को क्या करना चाहिए?
6. धारण ध्यान तथा समाधियों का एक स्थान पर किस प्रकार का अभिधान होता है?

ध्यान दें:

7. संयम के जीतने पर क्या होता है?

8. स्थितप्रज्ञ का क्या लक्षण होता है?

9. राग किसे कहते हैं तथा वह कितने प्रकार का होता है?

10. योगी की तप में प्रतिष्ठा होने पर किस प्रकार का फल लाभ होता है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 25.1

1. यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि ये आठ अङ्ग होते हैं।

2. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये यम होते हैं।

3. अहिंसा से तात्पर्य है सभी भूतों को दु:ख नहीं पहुँचाना। तथा उनकी प्राणवियोगानुकूल चेष्टा का अभाव।

4. मा हिंस्यास्त सर्वभूतानि इस प्रकार से।

5. आग लगाने वाला, जहर देने वाला, धन का हरण करने वाला, भूमि का हरण करने वाल तथा पत्नी को हरने करने वाला, इस प्रकार से ये छ: आततायी कहलाते है।

6. हिंसक पशु भी हिंसा नहीं करते।

7. सत्य से तात्पर्य है यथार्थ भाषण।

8. सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विनतो देवयान:

9. योगियों की सत्य में प्रतिष्ठा हो जाने पर वे क्रियाफल के दाता हो जाते हैं। उनके आशीर्वाद से धर्मस्वर्गादि प्राप्त हो जाते है। पतंजलि योगसूत्र में लिखा भी है- सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

10. अस्तेय से तात्पर्य है शास्त्रविधि का त्याग करके दूसरों के धन को लेना अथवा दूसरों के धन को हरण करने की अभिलाषा रखना। उसका अभाव ही अस्तेय कहलाता है।

11. अस्तेय की प्राप्ति होने पर संकल्पमात्र से योगी सभी प्रकार के रत्नों को प्राप्त कर सकता है।

12. अष्टाङ्गमैथुनों का त्याग के द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन हो पाता है। ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रिय उपस्थ का संयम होता है।

13. स्मरण, कीर्तन, हँसी मजाक, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रियानिवृत्ति इस प्रकार से अष्टाङ्ग मैथुन होता है।

14. वीर्य लाभ होता है।

15. समाधि के अनुष्ठान के लिए जो द्रव्य अपेक्षित है। उससे अतिरिक्त द्रव्यों का त्याग ही अपरिग्रह कहलाता है।

ध्यान दें:

16. अतीत अनागत तथा वर्तमान जन्म का ज्ञान होता है।
17. शौचसन्तोष तप स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान ये नियम होते हैं।
18. शौच दो प्रकार का होता है बाह्य तथा आभ्यन्तर
19. मिट्टी जलादि के द्वारा बाह्यशरीर मल को दूर करना तथा पवित्र भोजन का ग्रहण करना बाह्य शौच होता है।
20. मद मान असूया आदि अन्तः करण के मलों को दूर करना ही आन्तरिक शौच होता है।
21. शौच की प्रतिष्ठा होने पर योगी अपने शरीर से जुगुप्सा तथा दूसरों के शरीर से घृणा करने लगता है।
22. जो प्राप्त हो जाए उसी में ही सन्तुष्टि तथा प्राप्त नहीं होने पर अविषाद ही सन्तोष होता है।
23. सन्तोष से निरतिशय आनन्द का लाभ होता है।
24. तप से तात्पर्य हो कामनाओं का अनुपभोग।
25. स्वाध्याय प्रणव का जप तथा उपनिषदों की आवृत्ति है
26. मानस उपचारों के द्वारा ईश्वर का अर्चन ही ईश्वप्रणिधान कहलाता है।
27. हाथ पैर आदि के द्वारा पद्म स्वस्तकादि मुद्रा बनाकर उसमें स्थित रहना आसन कहलाता है।
28. आसन की सिद्धि होने पर योगियों को शितोष्णादि द्वन्द्व अभिभूत नहीं होते हैं।
29. रेचक पूरक तथा कुम्भक के द्वारा प्राण का निग्रह उपाय ही प्राणायाम कहलाता है।
30. प्राणायाम की प्रतिष्ठा होने पर ज्ञान के आवरण क्लेश कर्म धर्म आदि का क्षय होता है। इस प्रकार से पंतजलि ने कहा है- ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।
31. इन्द्रियों का अपने विषयों से प्रत्यावर्तन ही प्रत्याहार कहलाता है।
32. अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में अन्तिरिन्द्रयधारण ही धारणा होती है।
33. अद्वितीय ब्रह्म में किञ्चित विचलित अन्तरिन्द्रिय का प्रवाह ही ध्यान कहलाता है।
34. सविकल्पक समाधि ही यहाँ पर अङ्गभूत समाधि होती है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 25.2

1. लय विक्षेप कषाय तथा रसास्वाद ये निर्वकल्पक समाधि के विघ्न होते है।
2. लय से तात्पर्य है अखण्डवस्तु के अनवलम्बन से चित्तवृत्ति की निद्रा।
3. अखण्डवस्तु के अनवलम्बन से चित्तवृत्त का अन्य आलम्बन विक्षेप कहलाता है।

ध्यान दें:

4. लयविक्षेप का अभाव होने पर चित्तवृत्ति का रागादि वासना के द्वारा स्तब्धी भाव होना अखण्डवस्तु अनवलम्बन कषाय कहलाता है।

5. अखण्डवस्तु अवबलम्बन के द्वारा चित्तवृत्ति का सविकल्पक समाधि के आरम्भ समय में आनन्दास्वादन सविकल्पकानन्दस्वादन कहलाता है।

6. ध्यान में विचलित चित्तवृत्ति होती हैं तथा समाधि में अविचलित चित्तवृत्ति होती है।